मान का संघर्ष है स्त्री मानवाधिकार

*** डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल**

विगत की लगभग आधी शताब्दी के राजनीति विज्ञान के इतिहास में 'मानवाधिकार' एक ऐसा मूल्य बनकर उभरा है जिसने न केवल सामान्य मानव की सभी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक समानताओं तथा मूल अधिकारों की पैरवी की है अपितु इन अधिकारों के मार्ग में आने वाली बाधाओं के संघर्ष को आन्दोलन का रूप दिया है। आजाद भारत के संविधान निर्माण की प्रक्रिया और संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों की घोषणा को समकालीन माना जा सकता है। हमने अतीत के अपने अंधेरों को दूर करने, स्वतंत्रता संघर्ष कालीन दमन के अनुभवों से सीखकर पाश्चात्य व्यक्तिवादी, प्रजातंत्रीय, उदारवादी संस्कृति के मूल्यों से प्रभावित होकर जो संविधान बनाया वह अपनी ही धरती पर इसलिए युगान्तकारी कहा जा सकता है कि उसने एक ही झटके में 'धर्म, जाति, लिंग, मूलवंश अथवा जन्म स्थान पर आधारित सभी प्रकार की असमानताओं की समाप्ति की घोषणा[1] कर भावी भारत में मानवीय गरिमा की सैद्धान्तिक आधारशिला रखी। इसी घोषणा में भारत की आधी आबादी को लिंग पर आधारित सभी प्रकार की समानताओं तथा अवसरों का उपभोग करने की जो अधिकृत मंशा जाहिर की गयी थी, वहीं से अभिनव भारत को आगे बढ़ना था। इस संवैधानिक घोषणा की व्यवहारिक कठिनाइयों से संविधान निर्माता भली भांति परिचित थे इसलिए उन्होंने क्रियान्वयन के लिए कतिपय उपायों को नीति नर्देशक तत्वों[2] में शामिल किया, जैसे– स्त्री तथा पुरूषों को समान कार्य के लिए समान वेतन, जीविका के पर्याप्त तथा समान साधन, काम की न्याय संगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करना और प्रसूति सहायता उपलब्ध करना। संविधान निर्माताओं ने इन निर्देशों की दिशा में राज्य नीति के संचालन की उम्मीद जताई।

एक मात्र साधन नहीं क्योंकि जब हम स्त्री के अधिकारों की बात कर रहे होते है तो भारत में ही नहीं कमोबेश सारी दुनिया में सदियों से चली आ रही सामाजिक संरचना, परम्परा तथा स्थापित मूल्यों को चुनौती दे रहे होते हैं। बिडम्बना है कि हम पुनर्जागरण, धर्म सुधार आन्दोलन, अमेरीका और फ्रांसीसी क्रांतियों से निकले विश्वव्यापी "स्वतंत्रता समानता तथा भ्रातृत्व" के नारों की गूंज, ब्रिटेन के दीर्घकालीन प्रयोगों से निकली प्रजातंत्र, उदारवादी धाराओं को 'मानवता' का गौरवमयी उत्थान मानकर रोमांचित होते है जिसमें दुनियां की आधी आबादी लगभग अनुपस्थित है। केवल भारत एक ऐसा देश रहा जहां जातिगत संरचना में समाज के एक बड़े तबके को जन्म के आधार पर सभी मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया और जिनके अधिकारों की लड़ाई अम्बेडकर तथा गांधी ने लड़ी किन्तु जरा सोंचिए–उससे भी अधिक, 'एक लड़का बिना किसी गुण अथवा प्रयत्न के, अज्ञानी तथा मूर्ख होते हुये भी वह अपने जन्म के कारण आधी मानव जाति से श्रेष्ठ हो जाता है।[3] यह जन्मजात श्रेष्ठता हमारे पारिवारिक जीवन, समाज, संस्कृति के ताने–बाने में इस तरह गुंथी हुयी है कि जैसे ही इसे छूने की कोशिश की जाए, संस्कृति के रक्षकों को लगने लगता है कि ऐसा करने से हमारे परिवार तथा समाज का ताना बाना बिखर जायेगा। इसलिए मानवाधिकारों के संघर्ष को लैंगिक न्याय के संदर्भ में किसी सार्थक परिणाम पर पहुंचने के लिए केवल यही पर्याप्त नहीं है कि स्त्रियों के अधिकारों के विभिन्न कानूनों की सूची लेकर उसे घर–घर पहुंचाया जाए।

हमारी सारी ऐतिहासिक परम्पराऐं, धर्मशास्त्र तथा सामाजिक मूल्य एक ऐसी 'आदर्श नारी' की परिकल्पना पर आधारित है जिसके अनुसार, स्त्री वही है जिसमें 'स्त्रियोचित गुण' हो। इस 'स्त्रियोचित' ढांचे से बाहर निकलने की कोशिश यदि स्त्री करती है तो वह 'कुलटा' है, समाज की निगाह में अपराधी है। यहां पहले हम स्त्रियों को दूसरे दर्जे की नागरिकता प्रदान करने वाले समाजीकरण के कतिपय दृष्टान्तों की चर्चा करेंगे तत्पश्चात्, इसी पर आधारित ऐसे मुहावरों, तथा लोकोक्तियों तथा भाषा शैली की, जो स्त्री की हीन स्थिति को ही प्रतिध्वनित नहीं करते अपितु पग–पग इसे उसे अपमानित कर मानसिक रूप से प्रताड़ित करते है और मानसिक प्रताड़ना से मुक्ति भी मानवाधिकारों की सूची में वरीयता से रेखांकित की जानी चाहिए। उल्लेखनय है कि सामाजीकरण की प्रक्रिया स्त्री पुरूषों के सानिध्य में पूरी होती है। प्रारम्भ से ही समाजीकरण द्वारा स्त्रियों को अधीनता के लिए जो सहज प्रशिक्षण दिया जाता है वह उसे सामान्य मानव के स्थान पर 'औरत' बनाता है जिसे उसके मानस में नियति के रूप में स्थापित किया जाता है। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार है –

–'परिवार में बचपन से ही डांट–फटकार अथवा प्रशंसा द्वारा लड़की को खूबसूरत तथा बदसूरत जैसे शब्दों का अर्थ सिखाया जाता है और वह जल्दी ही सीख जाती है कि खुश करने का अर्थ है कि वह अपनी गुड़िया की तरह हमेशा सजी धजी रहे। खाना बनाना, सिलाई, कढ़ाई आदि गृहस्थी के काम के साथ विनयशीलता उसके व्यक्तित्व के सर्वोत्तम गुण है।[4]

–स्त्रियों की पराधीनता के लिए यदि किसी एक संस्था को प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना जाय तो वह 'पितृसत्तात्मक परिवार' हैं। यही वह धूरी है जिसके इर्द–गिर्द स्त्रियों की

*** विभागाध्यक्ष-इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)**

गुलामी का पूरा चक्र घूमता है। चूंकि स्त्री का विवाह प्रायः अनिवार्य है अतः विवाह के साथ ही उसे अपने जन्म स्थान से 'बेदखल' होकर जाना होता है और इसके साथ ही उसे नये स्थान पर अपरिचितों के साथ नये सिरे से जीवन की शुरूआत करनी होती है तो स्वाभाविक है कि उस नवीन परिवेश में उनकी अधिसत्ता, प्रभाव तथा प्रधानता होगी जिनका वह घर है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि पत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति प्रवासी की हो जाती है और जब तक वह उस घर में अपने को समायोजित तथा स्थापित करती है तब तक जीवन का एक लम्बा दौर गुजर चुका होता है।

ऐसे हजारों दृष्टान्त हमारे सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग है। ऐसा नहीं कि औरत इससे झंकृत और आहत न होती हो। ठेठ गांव की अनपढ़ औरत को भी जीवन की अपनी इस पीड़ा का अहसास है जिसे वह कई सामाजिक अवसरों पर गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। किन्तु इन गीतों को गाती भी वहीं है, सुनती भी वही है और इसके बावजूद वह इसको 'नियति' मानकर जीवन से सामंजस्य स्थापित करती है। अब संदर्भ चूंकि मानाधिकार के क्रियान्वयन के समक्ष चुनौतियों का है तो निम्न कहावतों, लोकोक्तियों, छीटाकशी तथा गालियों पर गौर करना आवश्यक है जो स्त्री पराधीनता और अपमान के व्यंग्यात्मक प्रतीक है। –'अरे यार तुम तो रोने लगे औरतों की तरह', 'मर्द बच्चे हो, बात–बात पर टेसूएं क्यों बहाते हो 'यह स्त्री विरोधी संस्कृति की ही अभिव्यक्ति है। पुरूष शासक है उसे रोना नहीं चाहिए। रोयेगा तो उसकी कमजोरी सामने आ जायेगी। इससे उसकी सत्ता कमजोर होगी वह रोयेगा तो औरत उसके हृदय की कोमलता, भाव प्रवणता या कमजोरी को ताड़ लेगी। तब भला वह उससे डरेगी कैसे ? उसकी सत्ता स्वीकार कैसे करेगी। लेकिन यदि लड़की कोई बहादुरी करे तो वह उसके लिए मर्दानी गौरव है। गौरव इसलिए कि वह बहादुरी आमतौर पर पुरूष ही करते हैं। औरत के लिए रोना घनीभूत पीड़ा भावदेक तथा दुख की अभिव्यक्ति भी होता है। जो संघर्ष करता है वह भी रोता है किन्तु हम इस प्रकार बच्चों की सहज भावनाओं की खिल्ली उड़ाते हैं।[5]

–औरत की अक्ल चोटी में होती है।/–औरत की अक्ल एड़ी में होती है, (शायद हम जैसों की जिनके चोटी नहीं है)/–औरत झगड़े की जड़ है।/–औरत के विषय में ऐसी सोच केवल आम पुरूषों की नहीं अपितु भारतीय संसद में कई बार सत्ताधारी पक्ष को शर्म और हीनता का अहसास कराने के लिए चूड़िया पहनायी गई हैं और इससे सम्बन्धित व्यंग्योक्ति है–'चूड़ियां पहन रखी हैं क्या ?–यदि कोई पुरूष अपनी पत्नी के साथ निर्धारित सामाजिक पराधीनता के मानदण्डों से जरा से ऊपर उठकर उसके प्रति सम्बेदनशील होना चाहे तो 'जोरू का गुलाम' (इस नाम से फिल्म भी बनी है) कहकर इतना प्रताड़ित किया जाता है कि वह पत्नी के साथ समानता का व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता। –अंत में पुरूष प्रधान समाज में औरत के जीवन के सबसे बड़े कटु सत्य की चर्चा करना आवश्यक है। –कश्मीर से कन्याकुमारी तक सारे आशीर्वाद जो स्त्रियों को दिये जाते है किन्तु उनमें यश तथा मंगल की कामना पुरूषों के लिए होगी यथा – सौभाग्यवती भवः पुत्र वतीभवः। –दूसरी और समस्त गालियां औरतों के यौनांगो पर बनायी गई हैं भले ही झगड़ा पुरूष या पुरूष के मध्य हो या स्त्री को प्रताड़ित करना हो। यही नहीं, ये गालियां भद्र समाज के आम बोलचाल का भी सहज हिस्सा होती है।

यह मानसिक प्रताड़तना पुरूषों के सहज जीवन का अभिन्न अंग है और बिना किसी धर्म, जाति, वर्ग तथा क्षेत्र के सारी नारी जाति इसकी शिकार है । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जहां हम सारे विश्व में मानाधिकार के संघर्ष की बात करते हैं वहां स्त्री वर्ग ही ऐसा है जिसका सारा जीवन कर्तव्यों की तूलिका से तराशा गया है। इस प्रकार केवल बलात्कार, शारीरिक हिंसा ही औरत के मूल अधिकारों का हनन नहीं है अपितु सामाजिक तथा सांस्कृतिक ढांचे में उसके लिए बनाई गई समस्त लोकोक्तियां मुहावरे और गालियां ऐसा सूक्ष्म सांस्कृतिक जाल है जिसमें उसकी गरिमा और स्वाभिमान जीवित नहीं रह सकते। मनुष्य होने से ही मनुष्य मान का अधिकारी है।[6] लेकिन औरत होने के कारण भारत की आधी मनुष्य जाति को इस अधिकार से वंचित किया गया है। इसके लिए प्रयास किये जाने आवश्यक है जैसे – कानूनी तौर पर जिस प्रकार दलितों के स्वाभिमान की रक्षा के लिए उनका जाति बोधक सम्बोधन दण्डनीय अपराध है उसी प्रकार की संवेदनशीलता का परिचय देते हुए राज्य, मानवाधिकार संगठन तथा प्रबुद्धजन महिलाओं से सम्बन्धित गालियों को दण्डनीय अपराध घोषित करें ताकि एक बड़े आकार की प्रताड़ना एवं भृर्त्सना से महिलाओं की गरिमा की रक्षा की जा सकें। अन्त में कात्यायनी की इस काव्यात्मक उम्मीद के साथ कि –

आ रही है ताप/जल रही है कहीं कोई आग/आंच
चेहरों पर चमकती है।/घाटियॉ, मैदान, वन–प्रान्तर/धरी है
सबने सजग चुप्पी/आहटें, कुछ आहटे है
आस–पास।/चिनगारियां उठती चिटखती हैं,/लगेगी क्या
आग जंगल में ?/आंच चेहरों पर चमकती है।

संदर्भ ग्रन्थ–1. भारतीय संविधान, भाग–2, अनुच्छेद–15 2.भारतीय संविधान, भाग–4, अनुच्छेद–39 तथा 42 3. जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्रियों की पराधीनता, अनु. प्रगति सक्सेना, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2002, पृष्ठ 111 4. सीमोन द बाउवार, द सैकण्ड सैक्स, अनु. प्रभा खेतान (स्त्री : उपेक्षिता) हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली 1998, पृष्ठ 125 5. कात्यायनी, दुर्गद्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, 1997 पृष्ठ 146–147 6. मनुष्य होने से ही मनुष्य मान का अधिकारी है, भगवान दास (सं.) रमेश उपाध्याय, आज के सवाल, 11 शब्दसंधान प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ 35